6 सुन चेतन इक बात

सुन चेतन इक बात हमारी, तीन भुवन के राजा।
रंक भये बिललात फिरत हो, विषयनि सुख के काजा ।।१।।

चेतन तुम तो चतुर सयाने, कहाँ गई चतुराई।
रंचक विषयनि के सुखकारण, अविचल ऋद्धि गमाई ।।२।।

विषयनि सेवत सुख नहिं राई, दुःख है मेरु समाना।
कौन सयानप कीनी भौंदू, विषयनि सों लपटाना ।।३।।

इस जग में थिर रहेना नाहीं, तैं रहेना क्यों माना।
सूझत नाहिं कि भांग खाइ है, दीसै परगट जाना ।।४।।

तुम को काल अनन्त गये हैं, दुःख सहते जगमांही।
विषय कषाय महारिपु तेरे, अजहूँ चेतत नाहीं ।।५।।

ख्याति लाभ पूजा के काजैं, बाहिज भेष बनाया।
परमतत्त्व का भेद न जाना, वादि अनादि गँवाया ।।६।।

अति दुर्लभ तैं नर भव लहेकैं, कारज कौन समारा।
रामा रामा धन धन साँटैं, धर्म अमोलक हारा ।।७।।

घट घट साईं मैंनू दीसै, मूरख मरम न पावे।
अपनी नाभि सुवास लखे विन, ज्यों मृग चहुँ दिशि धावै ।८।

घट घट साई घट सा नाईं, घटसों घट में न्यारो।
घूंघट का पट खोल निहारो, जो निजरूप निहारो ।।९।।

ये दश माझ सुनैं जो गावै, निरमल मन सा कर के।
'द्यानत' सो शिव सम्पति पावै, भवदधि पार उतर के ।।१०।।

हे चेतन प्राणी! हमारी एक बात को ध्यान से सुन! अरे तुम तो तीन लोक के स्वामी हो और फिर भी तुम इन्द्रिय विषय भोगों में लुब्ध होकर दरिद्री बनकर दुखी हो रहे हो।

अरे चेतन! तुम तो बहुत चतुर हो, सयाने हो, वह तुम्हारी चतुराई कहाँ गई? थोड़े से इन्द्रिय–विषयों के सुख के कारण, शाश्वत रहने वाली ऋद्धि को तुमने गवाँ दिया है।

इन्द्रिय–विषयों के सेवन में राई जितना भी सुख नहीं है। उल्टा इनके सेवन करने में मेरू पर्वत के समान महादु:ख है। अरे मूर्ख! तब भी तू इन विषयों से लिपटा हुआ है, यह तूने कैसा सयानापन किया है ।

इस अस्थिर जगत में कुछ भी स्थिर नहीं रहता है तो तू सदा काल रहेगा तूने ऐसा क्यों मान लिया? प्रकट में संयोगों को जाता देखकर भी तुझे ख्याल नहीं आता, लगता है कि तूने भांग खा रखी है जिससे तेरी सोचने –समझने की शक्ति क्षीण हो गई है।

इस जगत में दु:ख सहते–सहते तुम्हें अनन्तकाल व्यतीत हो गये तब भी तुझे भान नहीं हुआ कि ये इन्द्रिय विषय और कषाय ही तेरे महान शत्रु हैं।

जगत में यश, लाभ और पूजा(मान) के लिये तूने अपना यह बाहर का वेश बना रखा है। तूने परमतत्त्व को अर्थात् वस्तु स्वरूप को तो समझा नहीं और व्यर्थ में ही अनादिकाल से समय गँवाता जा रहा है।

यह दुर्लभ नर देह को पाकर तुमने क्या कार्य सम्पन्न किया? स्त्री–पुत्र और धन–सम्पदा के लिये तूने अमूल्य जिन धर्म को गँवा दिया।

ज्ञानी जीवों को घट–घट में, प्रत्येक देह में अनन्त शक्तिशाली आत्मा दिखाई देती है पर मूर्ख उसे समझ नहीं पाते। जैसे अपनी नाभि में रखी कस्तूरी की सुगंध से अनजान मृग उसके लिये सभी दिशाओं में दौड़ता फिरता है।

घट–घट में आत्मा विद्यमान होने पर भी उसका स्वरूप घट से अलग है तथा वह घट में रहकर भी घट से भिन्न है। जिस प्रकार घूंघट को हटाने के बाद स्त्री का सुंदर मुख दिखाई देता है वैसे ही जब यह जीव इस घट अर्थात् देह से भिन्न आत्म तत्त्व को दृष्टिंगत करता है तब उसको निज आत्मस्वरूप के दर्शन होते हैं।

कवि द्यानतरायजी कहते हैं कि जो अपने मन को निर्मलकर इन दस पदों को सुनते और धारण करते हैं वे संसार समुद्र से पार होकर मुक्ति रूपी लक्ष्मी को प्राप्त करते हैं।